BPSE-143: भारत में राज्य की राजनीति

(ट्यूटर द्वारा मूल्यांकित सत्रीय कार्य)

सत्रीय कार्य कोड: BPSE-143/ASST/TMA/2026-27

अंक: 100

सत्रीय कार्य – I

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए। (2 × 20 = 40 अंक)

1 भारत में राज्य की राजनीति के विकास का पता लगाइए और इसके अध्ययन के प्रमुख उपागमों पर चर्चा कीजिए।

2 भारतीय संघीय व्यवस्था में संघ-राज्य और राज्य-स्थानीय संबंधों का विश्लेषण कीजिए।

सत्रीय कार्य – II

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए। (3 × 10 = 30 अंक)

3. भारत में राज्य की स्वायत्तता और उप-क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँगों पर चर्चा कीजिए।

4. भारत में प्रमुख राज्य विकास मॉडलों की व्याख्या कीजिए।

5. प्रवासन और राज्य की राजनीति के बीच संबंधों का परीक्षण कीजिए।

सत्रीय कार्य – III

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए। (5 × 6 = 30 अंक)

6. राज्य दलीय व्यवस्था

7. राज्यों में चुनावी राजनीति

8. राज्यों में राजनीतिक नेतृत्व

9. दलितों, अन्य पिछड़ा वर्गों (OBCs) और महिलाओं की राजनीतिक मुखरता

10. राज्य की राजनीति में क्षेत्र और जनजातियाँ

1 भारत में राज्य की राजनीति के विकास का पता लगाइए और इसके अध्ययन के प्रमुख उपागमों पर चर्चा कीजिए।

उत्तर

प्रस्तावना भारत में राज्य की राजनीति का अर्थ केवल विधानसभाओं, मुख्यमंत्रियों और राज्य सरकारों की गतिविधियों से नहीं है। इसमें क्षेत्रीय समाज, जाति-वर्ग संबंध, भाषा, धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान, विकास, संसाधनों का वितरण, दलों की प्रतिस्पर्धा और केंद्र के साथ राज्यों के संबंध भी आते हैं। संविधान ने भारत को संघीय संरचना वाला लोकतांत्रिक गणराज्य बनाया। इसी ढाँचे के भीतर अलग-अलग राज्यों में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा की दिशा और सामाजिक आधार समय के साथ बदले हैं। इसलिए राज्य राजनीति को राष्ट्रीय राजनीति का मात्र छोटा रूप मानना उचित नहीं है।

स्वतंत्रता से 1960 के दशक तक: कांग्रेस का प्रभुत्व स्वतंत्रता के बाद अधिकांश राज्यों में कांग्रेस का संगठन प्रभावशाली था। स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ी वैधता, विभिन्न सामाजिक समूहों के नेताओं को समाहित करने की क्षमता और मजबूत संगठन ने उसे चुनावी बढ़त दी। फिर भी राज्यों की राजनीति एक समान नहीं थी। केरल में वामपंथी शक्तियों, तमिल क्षेत्र में द्रविड़ आंदोलन, पंजाब में क्षेत्रीय मांगों तथा पूर्वोत्तर में विशिष्ट पहचानों ने अलग राजनीतिक आधार तैयार किया। भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने 1950 के दशक से क्षेत्रीय आकांक्षाओं को संवैधानिक अभिव्यक्ति दी। इससे भारतीय एकता के साथ भाषायी विविधता को स्थान मिला।

वर्ष 1967 के बाद प्रतिस्पर्धा और गठबंधन वर्ष 1967 के विधानसभा चुनावों ने कई राज्यों में कांग्रेस के एकदलीय प्रभुत्व को चुनौती दी। गैर-कांग्रेसी गठबंधन सरकारें बनीं और सत्ता-परिवर्तन की संभावना बढ़ी। दल-बदल, नेतृत्व-संघर्ष और अस्थिर गठबंधनों की समस्याएँ भी उभरीं। राज्यों की राजनीति में किसान संगठनों, मध्यम जातियों और स्थानीय प्रभावशाली समूहों की भूमिका अधिक स्पष्ट होने लगी। तमिलनाडु में द्रविड़ पार्टियों की स्थायी उपस्थिति ने दिखाया कि क्षेत्रीय दल व्यापक सामाजिक आधार और विशिष्ट नीतिगत कार्यक्रम के साथ लंबी अवधि तक शासन कर सकते हैं।

सत्तर और अस्सी के दशकों में केंद्र-राज्य तनाव इस अवधि में केंद्र का राजनीतिक प्रभाव और राज्यपाल तथा अनुच्छेद 356 के प्रयोग पर विवाद चर्चा में रहे। आपातकाल, उसके बाद के चुनाव और अलग-अलग राज्यों में विपक्ष के उभार ने संघीय राजनीति को नया रूप दिया। पंजाब, असम और कुछ अन्य क्षेत्रों में भाषायी, धार्मिक या जातीय पहचान से जुड़ी मांगें तीव्र हुईं। अनेक आंदोलनों ने स्वायत्तता या मान्यता की संवैधानिक राह अपनाई, जबकि कुछ संदर्भों में संघर्ष भी हुए। राज्यों की राजनीति इस प्रकार शासन और लोकतांत्रिक सहमति दोनों की परीक्षा बन गई।

नब्बे के दशक से सामाजिक प्रतिनिधित्व और क्षेत्रीय दल मंडल आयोग की सिफारिशों पर हुई राजनीतिक बहस ने पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व को नई केंद्रीयता दी। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में पिछड़े वर्गों तथा दलित समूहों की राजनीति और नेतृत्व में महत्वपूर्ण बदलाव आए। गठबंधन युग में राष्ट्रीय सरकारों के गठन और नीतिगत निर्णयों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा।